बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 78

लोकलुभावनवाद

चुनाव से उपजी आपाधापी के समाप्त होने के बाद देश की नई सरकार को आर्थिक मंदी का सामना करना होगा। उसके सामने वृद्धि दर को दोबारा 6.5 फीसदी से बढ़ाकर 7 फीसदी पहुंचाने जैसे स्वाभाविक मुद्दे भर नहीं होंगे।

पहली बात तो यह कि हम स्वत: पुरानी वृद्धि दर तक नहीं पहुंच सकते और दूसरा सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के आंकड़ों की विश्वसनीयता संकट में है। इसके बजाय उन वास्तविक आंकड़ों पर ध्यान देना होगा जिनके साथ छेड़छाड़ करना संभव नहीं है। ये आंकड़े परेशान करने वाली कहानी बयान करते हैं। बीते पांच वर्ष के दौरान अधिकांश वक्त वाणिज्यिक वस्तुओं का निर्यात स्थिर रहा। यह घरेलू विनिर्माण की नाकामी को दर्शाता है।

इसके कारण अर्थव्यवस्था में आंतरिक बातों पर ध्यान देने की प्रवृत्ति बढ़ी है। कर राजस्व की स्थिति अच्छी थी लेकिन अब उसमें गिरावट देखने को मिली है। वस्तु एवं सेवा कर का संग्रह खासतौर पर यह बताता है कि कारोबार की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। कई क्षेत्रों के खपत के आंकड़ों में भी गिरावट आई है। इसका असर कारोबारी बिक्री और मुनाफे पर भी पड़ा है। बैलेंस शीट पर तनाव बरकरार है क्योंकि कर्ज का स्तर काफी ज्यादा है। तमाम उद्यमी अभी भी कर्ज का स्तर कम करने के प्रयास में लगे हैं। कुछ हार मानकर विदेशी निवेशकों के हाथ बिकवाली करने में लगे हैं। प्रमुख क्षेत्रों मसलन स्टील, सीमेंट और बिजली आदि के उत्पादन के आंकड़े भी कोई सकारात्मक संकेत नहीं देते। सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकनॉमी द्वारा प्रस्तुत कॉर्पोरेट परियोजनाएं अभी भी काफी निचले स्तर पर हैं और परियोजनाओं को किया जाने वाला सरकारी वित्त पोषण थम गया है। राजस्व में कमी के चलते अतीत में हुए काम का भुगतान भी नहीं हुआ है। बाह्य खाता सहज स्तर पर है क्योंकि पूंजी की आवक बनी हुई है, परंतु चालू खाते का घाटा बहुत अधिक है।

वित्तीय क्षेत्र की दिक्कतें बरकरार हैं। ऋण की स्थिति में सुधार हुआ है लेकिन बैंक अभी भी संकट में हैं। सरकारी बैंकों के फंसे हुए कर्ज के लिए बीती तिमाही में 52,000 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया जो इससे पहले के आंकड़े से दोगुना है। ऋणदाताओं की अगली कड़ी यानी गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के सामने नकदी का संकट है क्योंकि उनकी बैलेंस शीट में क्या कुछ छिपा है इसे लेकर भरोसा कम हो चुका है। ऐसी बहुपक्षीय मंदी से जूझ रही कोई भी सरकार क्या करती है? वह मौद्रिक और राजकोषीय उपायों के जरिये आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देती है। परंतु भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा ब्याज दरों में कटौती अब तक बाजार की वास्तविक दरों में नजर नहीं आ रहा। जहां तक राजकोषीय नीति की बात है घाटा इतना अधिक है कि किसी तरह की कर रियायत की पेशकश नहीं की जा सकती है, बशर्ते कि सरकार राजकोषीय अनुशासन को पूरी तरह न त्याग दे। अगर वह ऐसा करती है तो उच्च सरकारी उधारी से मौद्रिक नीति के लिए अलग समस्या खड़ी हो जाएगी। एक तीसरा उपाय भी है, और वह यह कि रुपये का अवमूल्यन करके विदेशों में भारतीय उत्पाद को सस्ता और प्रतिस्पर्धी बना दिया जाए। ऐसे में भारत वैश्विक कारोबारियों के लिए एक आकर्षक स्रोत बन जाएगा। परंतु कोई भी सरकार इस राह पर चलना नहीं चाहती। असली खतरा यह है कि अतीत के सुधारों ने जो गति प्रदान की है वह कहीं गायब न हो जाए। यही कारण है कि हमें ऐसे ढांचागत सुधारों की आवश्यकता है जो व्यवस्था को अधिक प्रतिस्पर्धी बनाएं।

बीते 15 वर्ष में ऐसे बहुत कम सुधार देखने को मिले हैं। यही कारण है कि श्रम, भूमि और पूंजी बाजार जैसे कारक बाजारों में सुधार नहीं हुआ। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रमुख कानूनों में बदलाव किया गया और सरकारी कंपनियों को बजट अवरोधों का सामना करना पड़ा। मिसाल के तौर पर एयर इंडिया को कोई बेल आउट नहीं देना। यह राजनीतिक तौर पर लगभग असंभव है क्योंकि इसका नुकसान कामगारों और किसानों को होगा जो पहले ही परेशान हैं। तथ्य हमें एक और निष्कर्ष की ओर ले जाते हैं: देश को धीमी वृद्धि के लिए तैयार रहना चाहिए। यह बात पहले ही स्पष्ट हो चुकी है लेकिन जीडीपी और रोजगार के आंकड़ों के साथ छेड़छाड़ करके इसे लगातार दबाया जाता रहा। अर्थव्यवस्था मनमोहन सिंह सरकार के कार्यकाल के आखिरी दौर में ही 7 फीसदी के स्तर से नीचे आ गई थी और आज तो सरकारी आंकड़े भी इसे 7 फीसदी से कम बता रहे हैं। चूंकि यह गति युवाओं को रोजगार दिलाने के लिहाज से पर्याप्त नहीं है इसलिए इसका राजनीतिक और सामाजिक असर होना लाजिमी है। एक कमजोर अर्थव्यवस्था में यह लोकलुभावनवाद के उभार के रूप में नजर आता है।

अजय मोहंती

आम चुनाव, गठबंधन और अर्थव्यवस्था

असहमति और विविधता को बचाए रखने और सहकारिता वाले संघवाद के संरक्षण के लिए एक व्यापक गठबंधन कहीं बेहतर होगा। यह ऐसी व्यवस्था हो जहां केंद्र और राज्य मिलकर निर्णय लें। बता रहे हैं **नितिन देसाई**

आम चुनाव अंतिम चरण में पहुंच रहा है। इस दौरान हम देश के इतिहास के सबसे कटु प्रचार अभियानों के साक्षी बने। नीतियों को लेकर न के बराबर बहस देखने को मिली जबकि सरकार के प्रदर्शन का भी कोई बचाव नदारद ही रहा। इसके बजाय परस्पर आरोप-प्रत्यारोप, अतीत की घटनाओं का उल्लेख और यहां तक कि प्रतिपक्ष की देशभक्ति पर सवाल उठाने, उसकी चारित्रिक हत्या करने तक की घटनाएं देखने को मिलीं। अक्सर इसका आधार सोशल मीडिया पर फैली फेक न्यूज बनी।

हममें से जो लोग आजादी के बाद के शुरुआती वर्षों में पैदा हुए वे अक्सर राजनीतिक बहस से नदारद हो रही सभ्यता के लिए अफसोस करते हैं। परंतु इस चुनाव प्रचार अभियान में तो राजनीतिक बहस नए स्तर तक गिर गई। यहां तक कि इसका स्तर हमारे लोकतंत्र के भविष्य के प्रति भी आशंका उत्पन्न कर रहा है। वरिष्ठ नेताओं ने मतदाताओं को वर्गीकृत करते हुए जो वक्तव्य दिए हैं वे अनुचित हैं क्योंकि उनमें प्राय: अल्पसंख्यकों को निशाना बनाया गया है जो संविधान का तिरस्कार है। ऐसे तमाम वक्तव्य देश के नागरिकों की समता को चुनौती देते हैं जो हमारे लोकतंत्र की बुनियाद है।

इस विभाजनकारी सोच को वैधता मिलना देश की एकता को सबसे बड़ा खतरा है। आज की राजनीतिक बहस में संकीर्ण राजनीतिक लाभ के लिए धर्म के आधार पर भेद को बढ़ाया जा रहा है। इसे सत्ताधारी दल के घोषणापत्र में भी महसूस किया जा सकता है जो सांस्कृतिक विरासत के खंड में केवल एक धर्म का जिक्र करता है। भविष्य में यह विभाजन बढ़कर जाति, भाषा या क्षेत्र के स्तर पर हो सकता है।

एक खतरनाक दलील यह भी है कि देश को एक मजबूत केंद्र सरकार की आवश्यकता है जिसका नेता करिश्माई हो और लगभग तानाशाही शैली में शासन कर सकता हो। एक स्वस्थ लोकतंत्र की राजनीतिक प्रक्रिया में संतुलन और एक दूसरे पर नियंत्रण आवश्यक है।

हमारे राजनीतिक ढांचे का सबसे संतुलनकारी आयाम है हमारी संघीय व्यवस्था जहां कई राजनीतिक दल अलग-अलग राज्यों में शासन कर रहे हैं। राज्य सरकारें तमाम धर्म, जाति और सांस्कृतिक समूहों के लोगों को राजनैतिक प्रतिनिधित्व का अवसर देती हैं। ऐसी कोई भी बात जो इस समृद्ध संघवाद को क्षति पहुंचाए, हमारे लोकतंत्र के लिए खतरा है। राज्य सरकारों का नेतृत्व देश की विविधता का परिचायक और केंद्र की तानाशाही प्रवृत्ति को रोकने वाला है।

आजादी के बाद के शुरुआती वर्षों में एकदलीय शासन के अधीन भी सी राजगोपालाचारी, गोविंद वल्लभ पंत, बीसी रॉय, रविशंकर शुक्ला, बीजी खेर और गोपीनाथ बारदोलोई जैसे मुख्यमंत्री पंडित नेहरू के राजनीतिक समकक्ष थे। हमें विविधतापूर्ण नेतृत्व और सहशासन की इस भावना को बचाना होगा।

तानाशाही भरा और विभाजनकारी राजनीतिक एजेंडा न केवल लोकतंत्र और सामाजिक समरसता के लिए बल्कि हमारी आर्थिक संभावनाओं के लिए भी खतरा है। सीमित रोक वाला शक्तिशाली नेता नोटबंदी जैसे मूर्खतापूर्ण कदम उठा सकता है। सत्ताधारी दल के भीतर प्रभावी आंतरिक जांच परख वाली व्यवस्था में ऐसा होना असंभव था।

केंद्र सरकार को यह भी याद रहना चाहिए कि तमाम विकास क्षेत्रों के लिए प्रभावी कार्यकारी दायित्व का निर्वहन राज्यों पर बहुत हद तक निर्भर है और वित्त आयोगों द्वारा सशर्त अनुदान में कमी के साथ वे लगातार आत्मनिर्भर होते जा रहे हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था को सहकारी संघवाद की आवश्यकता है जो केंद्र और राज्यों के साथ मिलकर निर्णय ले। ठीक जीएसटी परिषद के तर्ज पर। केंद्र में क्षेत्रीय दलों के साथ गठबंधन सरकार का बनना सहकारी संघवाद का बेहतर उदाहरण है। यह मान्यता सही नहीं है कि गठबंधन सरकारें अर्थव्यवस्था के लिए सही नहीं हैं क्योंकि तीन कमजोर गठबंधन सरकारों के दौरान हमें इसका उलट देखने को मिला है।

अधिनायकवादी वृत्ति वाला केंद्र स्थानीयता को बढ़ावा देगा। इससे आंतरिक प्रवासन कठिन होगा और वृद्धि प्रभावित होगी। दिल्ली-मुंबई औद्योगिक कॉरिडोर की महत्त्वाकांक्षी परियोजना के कारण पश्चिमी राज्यों में बड़े पैमाने पर प्रवासन होने की संभावना है। दक्षिण के राज्य तेजी से ऐसे जनांकीय चरण में पहुंच रहे हैं जहां कामगार आबादी की वृद्धि दर धीमी है। उन्हें अस्थायी और स्थायी दोनों प्रवासन की आवश्यकता पड़ेगी। परंतु इससे भी अधिक यह अलगाववादी भावनाओं की खुराक बनेगा और केंद्र के सत्ताधारी दल के नियंत्रण के बाहर के राज्यों के साथ राजनीतिक बहस की स्थिति और खराब होगी।

आगामी 23 मई को क्या नतीजे आएंगे यह कहा नहीं जा सकता है। हम सभी उन लोगों से बात करते और उन्हें सुनते हैं जिनसे हम सहमत होते हैं। ऐसे में परस्पर विरोधी बातें सुनने को मिलती हैं। इस शोर का बहुत बड़ा हिस्सा शहरी क्षेत्र से उभरता है। परंतु नतीजे छोटे कस्बों और गांवों से तय होंगे। क्या ये खामोश मतदाता कृषि संकट, छोटे कारोबारियों की कठिनाइयों आदि से प्रभावित होंगे या फिर वे जाति या राष्ट्रवाद के नाम पर अपना निर्णय देंगे।

नतीजे चाहे जो भी हों। अगले महीने सत्ता में आने वाली सरकार को कठिन आर्थिक परिस्थितियों का सामना करना होगा। केंद्र सरकार की वित्तीय स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं है। 2018-19 के संशोधित अनुमान से 1.6 लाख करोड़ रुपये कम राजस्व, राजस्व घाटे का 3.4 फीसदी से बढ़कर 3.9 फीसदी हो जाना और कर-जीडीपी अनुपात में गिरावट इसकी बानगी हैं।

बढ़ती तेल कीमतें चालू खाते के घाटे, राजस्व घाटे और मुद्रास्फीति पर दबाव डालेंगी। अमेरिका और चीन के बीच कारोबारी जंग विश्व अर्थव्यवस्था में धीमापन लाएगी। इस कठिन वृहद आर्थिक हालात में नई सरकार पर चुनावी वादे पूरे करने, सब्सिडी और बुनियादी व्यय बढ़ाने आदि का दबाव होगा। इससे वृहद आर्थिक हालात और बुरे हो सकते हैं।

चुनाव परिणाम में वास्तविक अंतर राजनीतिक क्षेत्र में महसूस होगा। अनुमान तो यही है कि आने वाले दिनों में हमें मौजूदा की तुलना में कहीं अधिक बड़ा गठबंधन देखने को मिलेगा। इसका नेतृत्व मौजूदा सत्ताधारी दल के हाथ में रह सकता है। अगर उसका प्रदर्शन बहुत ही कमजोर रहा हो तो हालात बदल भी सकते हैं। चाहे जो भी हो, विविधता को लेकर उत्पन्न हुआ जोखिम कम होगा। कहीं अधिक लचीले राजनेता विभाजनकारी नारेबाजी और व्यक्तिगत स्तर पर तैयार चुनावी नीतियों से दूरी बनाएंगे। यह स्वागतयोग्य होगा। परंतु एक गठबंधन सरकार का यह भी अर्थ होगा कि किसी भी वक्त चुनाव होने का खतरा भी मंडराता रहेगा।

लोकतंत्र और असहमति को बचाए रखने की यह कीमत हमें चुकानी पड़ सकती है। हमें इस सवाल के जवाब के लिए प्रतीक्षा करनी होगी कि देश के मतदाता अगले कुछ वर्ष तक कैसा हिंदुस्तान चाहते हैं।

बंगाल के मोर्चे पर ममता की भाजपा से कड़ी जंग

सियासी हलचल

आदिति फडणीस

ऐसा लगा कि इस हफ्ते अगर कहीं चुनावी जंग लड़ी गई तो वह पश्चिम बंगाल में ही थी। ममता बनर्जी ने अकेले दम पर आम चुनावों के आखिरी चरण को योद्धाओं की जंग में तब्दील कर दिया जिसका नतीजा यह हुआ कि भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) को भी सड़कों पर उतरने के लिए मजबूर होना पड़ा।

लेकिन मुश्किल यह है कि ममता को सड़क की राजनीति में नहीं हराया जा सकता है। पहले कांग्रेस और वामदल भी ममता की इस राजनीति का शिकार हो चुके हैं। वह अपने विरोधियों को चकनाचूर करने के लिए अपना दिलोजान लगा देती हैं। ममता अपने परिष्कृत अंदाज और बौद्धिकता के लिए नहीं बल्कि जमीनी संघर्ष के लिए जानी जाती हैं।

तृणमूल कांग्रेस की सुप्रीमो ममता ने जब कुछ झल्लाहट भरा बरताव किया था तो मंत्रिमंडल की बैठक में एक मंत्री ने चिढ़ते हुए कहा था, 'ममता बनर्जी की आखिर समस्या क्या है?' सवाल थोड़ा अटपटा था लेकिन उनके बंगाली सहयोगी ने इसका जवाब देने के लिए थोड़ा समय लिया। उन्होंने अपना चश्मा उतारा, उसके शीशे साफ किए और फिर उसे दोबारा पहनने के बाद कहा, 'अगर कोई यह सोचता है कि ममता रवींद्रनाथ ठाकुर से बेहतर कवि हैं, बीथोवन से बेहतर संगीतकार हैं और लियोनार्दो दा विंची से बेहतर चित्रकार हैं तो फिर हर बात में समस्या है।'

ममता को तमाम दलों का राजनीतिक तबका ऐसे बिगड़ैल बच्चे की तरह देखता है जिसे बड़े लोगों के बीच अकेले जाने की इजाजत नहीं दी जानी चाहिए। लेकिन बंगाल की जनता के लिए तो ममता की जिंदगी एक खुली किताब है और वह हमेशा ही उन लोगों में से एक रही हैं। गरीबी को काफी अहमियत देने वाले इस राज्य में ममता अब भी टीन की छत वाले एक साधारण घर में रहती हैं और पास में ही मच्छरों की भरमार वाला नाला भी है। उनका पहनावा भी काफी साधारण हैं। वह हाथ से बनी सूती साड़ी, रबर की चप्पलें और एक साधारण घड़ी पहनती हैं। महंगे मोबाइल फोन और चमचमाती कारें शायद उनके लिए बनी ही नहीं हैं। वह अपने बनाए एक नियम का पालन हमेशा करती हैं- वह कभी भी दूसरों के सामने खाना नहीं खाती हैं। शायद इसकी वजह यह है कि उनके आसपास ऐसे लोग रहते हैं जिन्हें पता ही नहीं होता है कि उनका अगला भोजन कहां से आएगा?

ममता का पालन-पोषण मुश्किल हालात में हुआ था। जब वह एक छोटी बच्ची थीं, तभी उनके पिता का निधन हो गया था। अब उनके लिए ये अवाम ही उनका परिवार है। वह इस बात को इतनी शिद्दत से मानती हैं कि अपने परिवार के किसी भी समारोह में शामिल नहीं होती हैं। (ममता के उत्तराधिकारी माने जा रहे उनके भतीजे अभिषेक बनर्जी की कुछ साल पहले दिल्ली में सगाई हुई थी। करीब तीन दिनों तक कार्यक्रम चलते रहे लेकिन ममता ने कोई खास व्यस्तता न होते हुए भी उन कार्यक्रमों से खुद को अलग ही रखा था।)

ममता अपनी मां के काफी करीब हुआ करती थीं। जब वह काम के सिलसिले में कालीघाट स्थित अपने घर से निकलती थीं तो उनकी मां उन्हें छोड़ने के लिए घर के दरवाजे तक आती थीं। कार में बैठी ममता अपनी गरदन घुमाकर अपनी मां को तब तक देखती रहती थीं, जब तक वह आंखों से ओझल नहीं हो जाती थीं। आम धारणा के उलट ममता अपने भाइयों के उतने करीब नहीं हैं। वह तुनकमिजाज हैं, पसंद-नापसंद को लेकर सख्त राय रखती हैं और बहुत ही कम लोगों पर भरोसा करती हैं।

राजनीति में उनके मार्गदर्शक कलकत्ता के महापौर सुब्रत मुखर्जी रहे हैं। मुखर्जी के प्रयासों से ही ममता को 1984 में पहली बार लोकसभा चुनाव लड़ने का मौका मिला था। उस चुनाव में ममता के सामने मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (माकपा) के दिग्गज नेता सोमनाथ चटर्जी थे। जादवपुर सीट पर हुई उस चुनावी जंग में ममता ने सोमनाथ को इस कदर मात दी थी कि वह दोबारा उस सीट से चुनाव नहीं लड़े।

मुखर्जी निजी बातचीत में उस दिन को कोसते हैं जब उन्होंने ममता को पूरे बंगाल में प्रभाव जमाने की खुली छूट दी थी। सौरभ गांगुली को पद्म पुरस्कार दिए जाने की मांग का प्रस्ताव कलकत्ता निगम में पारित कराने वाले मुखर्जी कहते हैं कि वह तो भारत रत्न के हकदार हैं। उन्होंने एक टीवी साक्षात्कार में कहा था, 'मेरे सिर पर ममता नाच रही हैं, मेरे नियंत्रण में निगम के सफाईकर्मियों की फौज है। मैं अब भी निगम ही चला रहा हूं। क्या इस उपलब्धि के लिए मुझे पुरस्कार नहीं मिलना चाहिए?'

सवाल है कि इस सबके बावजूद ममता ने बंगाल में भाजपा को अपना आधार मजबूत करने का मौका कैसे दे दिया? तृणमूल के समर्थक कहते हैं कि इसके लिए ममता केवल खुद को ही दोष दे सकती हैं। पूरे बंगाल में सरकारी जमीन पर नई मस्जिदें बन गई हैं। बाहरी पर्यटकों को उनके शुभचिंतक यह सलाह देते हैं कि कभी भी सड़क पर किसी मुस्लिम के साथ बहस न करें। अगर ऐसा किया तो पुलिस पहले आपको गिरफ्तार करेगी और फिर पूछताछ करेगी। ममता ने बेतुकेपन की हद तक सकारात्मक कार्यवाही का नियम लागू किया हुआ है। स्वाभाविक तौर पर लोगों के बीच इसका प्रतिवाद हुआ है और जिन हिंदुओं ने कभी खुद को हिंदू मतावलंबी के तौर पर नहीं देखा था, अब वे भी भाजपा के पीछे लामबंद हो रहे हैं। मां दुर्गा की धरती कहे जाने वाले बंगाल में अब भगवान राम ने भी दस्तक दे दी है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने बंगाल में एक रैली में कहा था कि तृणमूल कांग्रेस के कई विधायक भाजपा के संपर्क में हैं। अगर लोकसभा चुनाव में तृणमूल का प्रदर्शन खराब रहता है तो उसके विधायकों के भाजपा के पाले में जाने की संभावना बनेगी। दो साल बाद बंगाल में विधानसभा चुनाव भी होने वाले हैं। जाहिर है कि बंगाल अब भाजपा का नया मोर्चा बन चुका है।

कानाफूसी

युवाओं पर भारी दिग्गीराजा!

मध्य प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री और भोपाल संसदीय क्षेत्र से कांग्रेस के प्रत्याशी दिग्विजय सिंह कांग्रेस के उम्रदराज नेताओं में शुमार किए जाते हैं। परंतु सोशल मीडिया के इस्तेमाल के मामले में वह कई युवा नेताओं को पीछे छोड़ चुके हैं। पिछले दिनों मध्य प्रदेश के राज्य निर्वाचन आयोग ने विभिन्न प्रत्याशियों द्वारा सोशल मीडिया पर किए गए खर्च पर एक अंतरिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। यह पहला अवसर है जब चुनाव आयोग ट्विटर और फेसबुक जैसे माध्यमों पर किए जा रहे व्यय का भी रिकॉर्ड रख रहा है। राज्य में केवल एक चरण का चुनाव बाकी है और इस रिपोर्ट के मुताबिक दिग्विजय सिंह 1.50 लाख रुपये खर्च करके इस सूची में अव्वल हैं। जबकि अपने बयानों के कारण चर्चित रहने वाली उनकी प्रतिद्वंद्वी प्रज्ञा सिंह ठाकुर ने केवल 21 हजार रुपये की राशि खर्च की। उधर प्रदेश के मुख्यमंत्री कमलनाथ के पुत्र और छिंदवाड़ा से लोकसभा प्रत्याशी नकुलनाथ ने केवल 9,000 रुपये की राशि सोशल मीडिया पर प्रचार कार्य में व्यय की है। सबसे दिलचस्प मामला कांग्रेस महासचिव ज्योतिरादित्य सिंधिया का है। गुना से चुनाव लड़ रहे सिंधिया के बारे में जानकारी है कि उन्होंने अपने चुनाव प्रचार के दौरान सोशल मीडिया पर कोई राशि खर्च नहीं की।

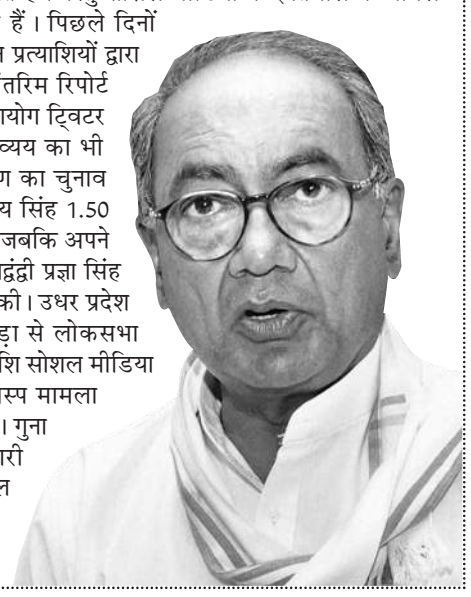

आपका पक्ष

अमेरिका का ईरान पर प्रतिबंध

ईरान पर अमेरिकी प्रतिबंध लागू होने से वैश्विक अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा जिससे भारत भी अछूता नहीं रहेगा। इराक और सऊदी अरब के बाद ईरान तीसरा सबसे बड़ा कच्चे तेल का उत्पादक देश है। भारत अपनी पेट्रोलियम ऊर्जा की जरूरतों को पूरा करने के लिए 80 प्रतिशत आयात करता है। ईरान भारत के लिए सिर्फ कच्चे तेल का निर्यातक देश ही नहीं है बल्कि दोनों देशों के ऐतिहासिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक संबंध भी रहे हैं। अफगानिस्तान में शांति एवं स्थायित्व के लिए ईरान का सहयोग महत्त्वपूर्ण है। साथ ही भारत के लिए मध्य एशिया तक पहुंच सुनिश्चित करने की दृष्टि से चाबहार बंदरगाह एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। हालांकि प्रतिबंधों से चाबहार को बाहर रखने का

अस्थायी आश्वासन अमेरिका ने दिया है। यह भारत के लिए मध्य एशिया का व्यापारिक द्वार खोलेगा। पिछले कुछ वर्षों में भारत और अमेरिका के रिश्ते प्रगाढ़ हुए हैं। ऐसे में भारत के लिए अमेरिकी प्रतिबंधों को नजरअंदाज करना कठिन होगा। अगर भारत ईरान पर

अमेरिका द्वारा ईरान पर प्रतिबंध लगाए जाने से भारत पर प्रतिकूल असर पड़ेगा

लगे प्रतिबंधों को नहीं मानता है तो उसे भी प्रतिबंधों का सामना करना पड़ सकता है। मौजूदा समय में अमेरिका सबसे बड़ी आर्थिक एवं सैन्य शक्ति है। विश्व व्यापार के सभी मार्ग अमेरिकी बैंकिंग से होकर गुजरते हैं। अंतरराष्ट्रीय व्यापार के लिए अमेरिकी डॉलर एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। साथ ही चीन भारत के मुख्य प्रतिद्वंद्वी के रूप में उभरा है जो भारत को प्रत्येक मोर्चे पर मात देने की कवायद में जुटा है। वहीं सिल्क रोड इनिशिएटिव के माध्यम से वैश्विक अर्थव्यवस्था को विभिन्न आयामों से जोड़ने के लिए प्रयासरत है। इन परिस्थितियों में भारत को एक मजबूत शक्ति की सहायता की जरूरत होगी जिसके माध्यम से चीनी आर्थिक साम्राज्यवादी नीतियों का काट प्रस्तुत कर सके।

रविराज, डुमरिया

कर्मचारी बचाए जेट एयरवेज को

जेट एयरवेज के कई कर्मचारी बेरोजगार हो गए हैं। अगर कर्मचारी अपने वेतन को 25 से 30 प्रतिशत कम कर कंपनी से मिलने वाली सुविधाओं में कटौती करें तो कंपनी को बचाने में मदद मिल सकती है। अगर दूसरी एयरलाइंस कंपनियां मुनाफा कमा रही हैं तो जेट एयरवेज भी अपने घाटे से उबर सकती हैं। कई वर्ष पहले केरल में एक कंपनी को बंद होने से उसके कर्मचारियों ने बचाया था। कंपनी के कर्मचारियों ने खर्च कम किया तथा कंपनी को चलाया था। ब्रिटेन की एक कंपनी के कर्मचारियों ने कंपनी को बंद होने से बचाया था। जेट कंपनी के कर्मचारी यूनियन ऐसे उदाहरणों पर गौर कर सकते हैं तथा कंपनी को बचा सकते हैं।

गंगाबिसन कलंगी, नासिक

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।